१

भाद्र शुक्ल २, मंगलवार, ८-९-१९६४
श्री तारणस्वामी द्वारा रचित श्रावकाचार
गाथा-३, १३, ३३, ३१३, ३५३ तथा ३५७, प्रवचन - १८

यह श्रावकाचार ग्रन्थ है। इसके कर्ता तारणस्वामी अध्यात्मदृष्टिवन्त ५०० वर्ष पहले हुए। उन्होंने श्रावकाचार किसे होता है, किस प्रकार होता है, उसका यहाँ कथन है। मंगलाचरण करते हैं, श्रावकाचार शुरु करने से पहले।

देव देवं नमस्कृतं, लोकालोक प्रकाशकं।
त्रिलोकं अर्थ ज्योति, ओमाकारं च विन्दते॥१॥

पहली गाथा। क्या कहते हैं? देव। चार प्रकार के देवों के देव—इन्द्रादिक द्वारा '**नमस्कृतं**' देवाधिदेव परमात्मा तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर, चार प्रकार के देवों के भी देव हैं। चार प्रकार—भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष और वैमानिक, जो चार प्रकार के देव हैं, वे भी उनको नमस्कार करते हैं; इसलिए देवाधिदेव कहने में आता है। '**लोकालोक प्रकाशकं**'। लोक और अलोक का प्रकाश करनेवाले। तीन लोक के पदार्थों के लिये ज्योतिरूप है। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव तीन लोक में लोक और अलोक के प्रकाशक हैं और तीन लोक के पदार्थ के ज्योतिरूप हैं। तीन लोक के पदार्थ की ज्योति

है कि इस जगत के पदार्थ जैसे हैं और मैं ऐसा हूँ, ऐसा भगवान का ज्ञान प्रकाशता है तो उसे ज्योतिरूप कहने में आता है।

ॐको भी वन्दना करता हूँ। आचार्य महाराज तारणस्वामी को ॐ का बहुत प्रेम है। तो पहले ॐ जो पाँच परमेष्ठी का वाचक शब्द है, वाचक-वाच्य, उनको वन्दना करते हैं। भगवान की वाणी, भगवान ही ॐ हैं और भगवान के मुख में से 'ॐकार ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे' भगवान के मुख में से ॐ वाणी निकलती है। गणधर उसमें से बारह अंग की रचना करते हैं। यहाँ तारणस्वामी (ने) प्रथम श्लोक में ही श्रावकाचार का स्वरूप कहने से पहले, देवाधिदेव को पहले नमस्कार किया है।

१३वीं गाथा। **सरस्वती को नमस्कार।**

कुज्ञानं तिमिरं पूर्ण, अंजनं ज्ञानभेषजं।
केवलि दृष्ट स्वभावं, च जिन सारस्वती नमः ॥१३॥

देवाधिदेव को नमस्कार करके, तारणस्वामी यहाँ १३वीं गाथा में सरस्वती को नमस्कार करते हैं। भाव सरस्वती, अन्तर का ज्ञान; द्रव्य सरस्वती, वीतराग की वाणी। भाव सरस्वती अन्तर का सम्यक् ज्ञान। केवलज्ञान अथवा भावश्रुतज्ञान और द्रव्य सरस्वती भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा की वाणी। उसको यहाँ सरस्वती कहने में आया है। उस सरस्वती को यहाँ नमस्कार करते हैं।

कैसी है सरस्वती-भगवान की वाणी? मिथ्याज्ञानरूपी अन्धकार से जो पूर्ण भाव है, उसको मिटाने के लिये.. समझ में आया? अनादि का जो अज्ञान निगोद से लेकर अनन्त बार जैन साधु होकर, मिथ्यादृष्टि दिगम्बर द्रव्यलिंग को धारणकर नौवीं ग्रैवेयक तक गया तो भी अज्ञान का नाश हुआ नहीं। इस अज्ञान का नाश करनेवाली (सरस्वती है)। सम्पूर्ण अज्ञानरूपी अन्धकारपूर्ण जो अज्ञानी का भाव, उसको मिटाने के लिये भगवान की वाणी में सामर्थ्य है। दूसरे की वाणी अज्ञान मिटाने में निमित्त भी हो सकती नहीं। देखो! देवाधिदेव को नमस्कार किया। (बाद में) १३ वीं गाथा में यह आया। समझ में आया?

भगवान कैसे हैं? '**केवलि दृष्ट स्वभावं**'। केवली द्वारा तीन काल—तीन लोक जो देखने में आये, उसका प्रकाश करनेवाली ऐसी जिनेश्वर-वाणी है। भगवान की वाणी में

तीन काल, तीन लोक जो ज्ञान में देखने में आये, वही वाणी में आया है। जैसा ज्ञान हुआ, ऐसी वाणी हुई। उस वाणी को यहाँ सरस्वती कहते हैं और उस सरस्वती को यहाँ विनय करके, नमस्कार करके श्रावकाचार वर्णन करने में आता है। कहो, समझ में आया? अब, ३३। ३३ (गाथा) है न? अब तत्त्व की बात आयी। शुरुआत यहाँ से होती है। देखो, क्या कहते हैं?

देव को नमस्कार करके और सरस्वती को नमस्कार करके सम्यग्दर्शन का स्वरूप कहा जाता है। सम्यग्दर्शन किसको होता है? कैसे होता है? उसका क्या स्वरूप है? उसका वर्णन करते हैं।

सप्त प्रकृति विच्छेदाश्च, शुद्ध दृष्टि श्च दृष्टते।
श्रावकं अव्रतं जैनं, संसार दुःख परान्मुखम॥३३॥

सातों प्रकृतियों का सर्वथा क्षय। देखो! अपने सुबह चलता है। कर्म की प्रकृति है, वह अपने को दोष नहीं करती है। सेठ! आताा है? सवेरे चलता है। कर्म अपने को दोष नहीं करता है, यह निर्णय पहले करना चाहिए। मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान और राग-द्वेषरूपी मिथ्याचारित्र, यह कर्म से अपनी पर्याय में होते हैं, ऐसा है नहीं। अपना अनादि का स्वरूप का अभान के कारण मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान और मिथ्या राग-द्वेष का परिणाम अपनी पर्याय में अपने उल्टे पुरुषार्थ से आत्मा में होता है। रतनलालजी! कर्म नहीं करवाता। वह पहले कहा। '**सप्त प्रकृति विच्छेदो**'। छेद करनेवाला अपने पुरुषार्थ से उल्टा राग-द्वेष और मिथ्यात्व करता था, वह सुलटा पुरुषार्थ करके, उस सात के निमित्त से अपनी पर्याय में मलिनता थी, उसका छेद हुआ, तो सात प्रकृति भी उस कारण से छेद हो जाती है। समझ में आया?

सात प्रकृति के नाम भी नहीं आते होंगे? मिथ्यात्व, मिश्रप्रकृति, समकित मोहनीय। ऐसी तीन प्रकृति है। दर्शनमोहनीय, और अनन्तानुबन्धी चार। अनन्त संसार का कारण। अनन्त क्रोध, मान, माया और लोभ, ये सात प्रकृति है। सेठ! सात प्रकृति के नाम आते हैं? पूरे नाम नहीं आते। ठीक है, स्वीकार करते हैं, ठीक है। देखो! ३३ में आया। '**सप्त प्रकृति विच्छेदाश्च**'। उसका अर्थ—अपने आत्मा में शुद्ध स्वभाव अखण्ड आनन्द और ज्ञायकमूर्ति है, उसकी अन्तर्मुख दृष्टि करने से सब प्रकृति के निमित्त से अपनी पर्याय में जो अपराध

मिथ्यात्व का था, उसका जब नाश हुआ तो सात प्रकृति का भी नाश होता है। सात प्रकृति का आत्मा से नाश करना पड़ता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? आत्मा पर प्रकृति का छेद करे, ऐसा नहीं। आत्मा अपना ज्ञायक चैतन्यस्वरूप... वह अभी पीछे आयेगा, अपने स्वभाव में... ३५३ आदि में आयेगा। भगवान आत्मा वस्तु एक समय में पूर्ण ज्ञायक आनन्द। पर्याय में कर्म का निमित्त है और जीव अपनी भूल से करता अपराध है। उस भूल को टालना, उसका नाम सप्त प्रकृति का नाश हो जाता है, ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बताया है।

'**सप्त प्रकृति विच्छेदाश्च**'। अपना ज्ञायकमूर्ति पूर्णानन्द स्वरूप, उसकी अन्तर्दृष्टि करने से मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी भाव का नाश होता है। क्या कहा? भावकर्म का नाश होता है। भावकर्म मिथ्यात्व परिणाम, राग-द्वेष भाव, वह भावकर्म है। और प्रकृति जड़ द्रव्यकर्म है। तो द्रव्यकर्म का भी नाश आत्मा में करना नहीं; भावकर्म का भी नाश करूँ—ऐसा नहीं है। अमरचन्दभाई! अपना शुद्ध ज्ञानमूर्ति पर्याय में अनादि से भूल करता था, मिथ्या अभिप्राय (था कि) पुण्य में धर्म है, पाप में मजा है, संयोगी चीज़ मैं करता हूँ, संयोग से मुझमें सुख होता है, ऐसी जो मिथ्याश्रद्धा का अभिप्राय था, उसके साथ जो अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ का विकार था, उससे मेरा स्वरूप भिन्न है, ऐसा पूर्ण शुद्ध ज्ञायक की दृष्टि करने से, वह विकार / भावकर्म का नाश अथवा उत्पत्ति होती नहीं, उसका अर्थ भावकर्म का नाश आत्मा ने किया, ऐसा कहने में आता है। अमरचन्दभाई! भावकर्म का नाश आत्मा कर नहीं सकता। भावकर्म उत्पन्न होता है पर्याय में, किन्तु वह स्वभाव दृष्टि से (होता) नहीं और स्वभाव की दृष्टि करने से उसका नाश करना पड़ता है, ऐसा भी नहीं। समझ में आया? स्वभाव ज्ञायक चैतन्यमूर्ति अखण्डानन्द एकरूप स्वरूप परमात्मा मेरा अभेद स्वरूप है। देखो! उसकी दृष्टि करने से मिथ्यात्वरूपी विकारी भावकर्म और अनन्तानुबन्धी का विकाररूप परिणाम मलिन भावकर्म, उसका नाश हो जाता है। नाश का अर्थ (यह है कि) उस विकार की उत्पत्ति होती नहीं। स्वभाव का आश्रय-दृष्टि करने से विकार की उत्पत्ति होती नहीं, उसको विकार का नाश किया—ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? अभ्यास नहीं।....चंदजी! अभ्यास किया है कभी? कमाना, पैसा, पैसा, पैसा। क्या कहते हैं?

कहते हैं, '**सप्त प्रकृति विच्छेदाश्च**'। जैनदर्शन में ऐसी चीज़ है, अन्य में ऐसा है नहीं। सात प्रकृति क्या है, उसके निमित्त से आत्मा अपने से क्या अपराध करता है और उस अपराध का नाश किस प्रकार होता है, ऐसा उसको पहले समझ में लेना चाहिए। प्रकृति तो जड़ है, वह तो निमित्तमात्र है। जड़ प्रकृति अपने को दोष करती नहीं। दोष करता है तो प्रकृति को निमित्त कहने में आता है। शोभालालभाई! समझ में आया?

कहते हैं, '**सप्त प्रकृति विच्छेदाश्च, शुद्ध दृष्टि श्च दृष्टते।**' देखो! है न? शुद्ध आत्मदृष्टि ही, शुद्ध क्षायिक सम्यग्दर्शन ही। इतना जोर लिया, भाई! शुद्धदृष्टि है न? शुद्ध। शुद्ध का अर्थ किया। ज्ञायकदृष्टि अथवा शुद्ध चैतन्यमूर्ति की दृष्टि, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है कि जो श्रावक का पहला धर्म का आचरण है। श्रावकाचार में पहला आचरण उसको कहते हैं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन का आचरण हुए बिना श्रावक का कोई आचरण हो सकता नहीं, होता ही नहीं। तो पहले सम्यग्दर्शन की व्याख्या की। देखा! संख्या भी ३३ आयी है उसमें। दो (बार) तीन। समझे?

'**शुद्ध दृष्टि श्च दृष्टते।**' आत्मा में ... करता है। क्या कहा? अपना स्वभाव परमानन्द ज्ञायकभाव (है), ऐसी दृष्टि करने से सप्त प्रकृति का विच्छेद होता है और अपना स्वभाव उसमें प्रतीति में, दिखने में आता है। प्रतीति में, देखने में-श्रद्धा में, देखने में आता है। ....जी! पहली बात श्रावक की यह मुख्य बात है। इसके बिना, सम्यग्दर्शन बिना श्रावकपना होता ही नहीं। जैन होने पर भी। यहाँ देखो! '**श्रावकं अव्रतं जैनं**' तीसरा पद है। समझ में आया? ऐसा अविरती श्रावक होता है, वही जैनी है। है भाई? जैनी, यह जैनी है। यहाँ तो तारणस्वामी उसको जैनी कहते हैं। अमरचन्दभाई! नामनिक्षेप से जैन है, स्थापना में-सम्प्रदाय में जन्म हुआ है, उसको परमार्थ से जैन कहते नहीं। रतनलालजी! हम जैन में जन्म हैं तो हम जैनी है। नहीं। इनकार करते हैं।

'**श्रावकं अव्रतं जैनन:**' अभी तो अव्रती जैन सम्यग्दृष्टि। जिसको अभी व्रत नहीं हो, चारित्र नहीं हो, वह प्रथम दशा जैन की (है)। '**श्रावकं अव्रतं जैनं**' अव्रती जैन अपना शुद्ध आत्मा को देखता है, श्रद्धा करता है, अनुभव करता है, सप्त प्रकृति का नाश होता है, तब उसको अव्रती जैन प्रथम भूमिका का कहने में आता है। समझ में आया? ऐ... सेठ!

हम जैन में जन्मे हैं, (इसलिए) हम जैन है, जैन है—ऐसा नहीं। नहीं चलेगा। देखो! क्या कहते हैं?

'**संसार दुःख परान्मुखम**' कैसा है जैन? कि जो अव्रती श्रावक होता है, वही जैनी है। जैन का अर्थ जीतनेवाला। किसको जीतनेवाला? अपनी पर्याय में राग-द्वेष और अज्ञान और मिथ्याभाव है, उसे स्वभाव के आश्रय से जीतनेवाला, उसको अव्रती जैन, जैन के पहले एक नम्बर में गिनने में आता है। कहो, समझ में आया? उसके बिना जैन कहते नहीं। मात्र पूजा, भक्ति, व्रत-बाह्य का व्रत, आचरण करो, (उसमें) राग की मन्दता हो तो पुण्य है। जैनपना उसमें नहीं आया? जैनपना, तो कहते हैं कि, '**संसार दुःख परान्मुखम**'। वही जैन संसार के दुःखों से विपरीत सुख का भोगनेवाला है। क्या कहा? आत्मा अपना शुद्ध आनन्द, ज्ञायकमूर्ति की अन्तर्मुख दृष्टि करने से वह दुःख से परान्मुख हो जाता है। सम्यग्दृष्टि, हों! प्रथम चौथे गुणस्थान में अव्रती सम्यग्दृष्टि। अभी पंचम गुणस्थान का श्रावक बाद में होगा। और छठ्ठा-सातवाँ (गुणस्थान) मुनि का तो बाद में आता है। कहते हैं....

सम्प्रदाय में खबर नहीं है कि क्या है। क्या तीर्थंकर कहते हैं, क्या साधु कहते हैं, क्या ज्ञानी कहते हैं, खबर नहीं और मान ले कि हम जैन हैं। यहाँ तारणस्वामी ना कहते हैं कि उसको हम जैन कहते नहीं। शोभालालभाई! प्रयत्न करना पड़ेगा, ऐसा कहते हैं। पैसे ऐसे ही पुण्य के कारण मिल जाते हैं, उसमें कुछ है नहीं। धूल में कुछ नहीं है, उसमें क्या है? पाँच-पचास करोड़, दो करोड़ मिले उसमें आत्मा में क्या आया? आत्मा में क्या आया? आत्मा में आयी ममता। वह चीज़ तो यहाँ आती नहीं। मुझे मिला, ऐसी ममता उसके पास आयी। बराबर है? अमरचन्दभाई! वह चीज़ उसके पास आती है? वह तो भिन्न रहती है। यथास्थान में है, उसके स्थान में है। उसे लगता है कि मैं करोड़ का आसामी हूँ, मैं पाँच करोड़ का (धनी हूँ), वह तो ममता हुई। ममत्व अर्थात् दुःख हुआ; दुःख अर्थात् आकुलता हुई। उसमें क्या आया? आकुलता आयी। क्यों, प्रेमचन्दजी! क्या आया? पैसे में आकुलता आयी। पैसे से नहीं, हों! उसकी ममता से।

कहते हैं, '**श्रावकं अव्रतं जैननः, संसार दुःख परान्मुखम**' एक गाथा में कितना भरा है! एक तो, सात प्रकृति जैन में होती है, दूसरे में होती नहीं। अमरचन्दभाई! सात प्रकृति। अनन्तानुबन्धी चार, मिथ्यात्व, मिश्र, ये अन्य में जैन के अलावा कहीं होती नहीं।

सर्वज्ञ भगवान ने मार्ग देखा, उसमें आत्मा की पर्याय में पहले मिथ्यात्व का दोष होता है, उसमें निमित्तरूप सात प्रकृतियाँ पड़ी हैं। उस प्रकृति का नाश कैसे होता है ? यहाँ तो, '**विच्छेदो**' कहा है। अपना शुद्ध भगवान ज्ञायकभाव चैतन्यसूर्य प्रकाशमय, जो पर्याय में मिथ्यात्वभाव है, उसका स्वभाव के आश्रय के मिथ्यात्वभाव का छेद हो जाता है। तो प्रकृति का छेद तो सहज हो जाता है। उसका नाम भगवान तीर्थंकर कहते हैं, ऐसे तारणस्वामी कहते हैं कि उसको हम जैन कहते हैं। दूसरे को जैन कहते नहीं।

'**संसार दुःख परान्मुखम**' ओहो.. ! सम्यग्दर्शन हुआ, तब से दुःख-आकुलता के परिणाम से समकिती परान्मुख है। समझ में आया ? परान्मुख नाम उल्टा है। अपने आत्मा में आनन्द है, इस आनन्द का अनुभव करनेवाला समकिती है। ....याजी ! आहाहा ! समझ में आया ? अतीन्द्रिय आनन्द का भण्डार आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, उसमें आनन्द में घुसकर दृष्टि में एकाकार होकर (अर्थात्) दृष्टि स्वभाव में एकाकार होकर सम्यग्दृष्टि जैन हुआ, वह दुःख से परान्मुख हुआ। आकुलता है, संयोग भी है, परन्तु दृष्टि में उससे परान्मुख हुआ। भाई ! ऐसा लिया। स्वभाव सन्मुख हुआ है।

'**संसार दुःख परान्मुखम**' देखो ! शब्द क्या लिया ? आत्मा शुद्ध आनन्द और ज्ञायक है। उसके सन्मुख हुआ। सम्यग्दृष्टि जैन प्रथम भूमिका का। स्वभाव आनन्दमूर्ति भगवान, उसके सन्मुख हुआ और विकार से परान्मुख हुआ। आहाहा ! विकार और आकुलता होने पर भी एक ही क्षण में धर्मात्मा, अपना सच्चिदानन्दस्वरूप में सावधान / सन्मुख हुआ है और दुःख की आकुलता होने पर भी उससे परान्मुख हुआ है, विमुख हुआ है, अपना मुख मोड़ दिया है। अमरचन्दभाई ! ... लिया है। सम्यग्दृष्टि, अपना मुख पर—ऊपर जो मिथ्यात्व में अनादि का था, पुण्य और पाप मैंने किया, राग-द्वेष मैंने किये, संयोग मैं प्राप्त करता हूँ, संयोग मैं दूर करता हूँ, अपनी ज्ञान, दर्शन, वीर्य की जो अल्प पर्याय है, उतना मैं हूँ—ऐसी जो मान्यता मिथ्यात्व में—परसन्मुख में थी, वह जब अपना स्वभाव त्रिकाल ज्ञायक-सन्मुख हुआ तो संयोग, कर्म और राग, ऐसी आकुलता से अपना मुख मोड़ दिया है। आहाहा ! समझ में आया ? देखो ! एक ३३वीं गाथा में इतना कहा है। शोभालालभाई ! है या नहीं उसमें ? देखो ! आपको दिया, सेठ को हाथ में सामने दिया। बहीखाते के पन्न घुमाते हैं कि इस पन्ने पर क्या लिखा है ? तारणस्वामी क्या कहते हैं ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : यह सब जानना पड़े ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जाने बिना होता होगा ? संसार में जाने बिना माल लेने जाता होगा ? शक्कर लेने जाये वहाँ ऐसा कहे कि दूध चाहिए, तो ? शक्कर लेने जाना हो, सब्जी लेनी हो, सब्जी कहते हैं न ? पचास भाँति की सब्जी हो, सब्जी लेने जाये (और कहे कि), दाल दीजिये। सब्जी देगा ? जो सब्जी लेनी हो, उसका नाम ले, उसका ज्ञान करे तो सब्जी मिलेगी। लौकी सब्जी लाओ। रतनलालजी ! वहाँ जाकर कहे कि कपड़ा लाओ। पागल है। सब्जी की दुकान पर कपड़ा कहाँ से आया ? वहाँ भी उसका भान करना पड़ता है कि में सब्जी लेने आया हूँ। परन्तु सब्जी में पचास चीज़ है, वह नहीं। मैं तो लौकी लेने को आया हूँ। तो उसका ज्ञान दूसरे से भिन्न करना पड़ता है। ये नहीं, ये नहीं, करेला नहीं, तोरई नहीं, यह लौकी (चाहिए)। ऐसा करना पड़ता है या नहीं ? ऐसा ज्ञान किये बिना मिल जाता है ?

उसी प्रकार आत्मा, संयोग नहीं, राग नहीं, कर्म नहीं, अपूर्ण पर्याय जितना नहीं। मैं पूर्ण ज्ञायकभाव स्वभाव हूँ, ऐसा पर से भेदज्ञान करने से अपने स्वरूप का पता लगता है। उसके सिवा स्वरूप का उसे पता लगता नहीं। समझ में आया ?

कहते हैं कि '**संसार दुःख परान्मुखम**'। ओहो.. ! भाषा कैसी की है ? शुद्ध दृष्टि अन्तर स्वभाव-सन्मुख (हुई) तो दुःख से परान्मुख हुआ। चिद् स्वभाव भगवान आत्मा के सन्मुख हुआ और विकल्प है सही, दुःख (है), अभी अविरत सम्यग्दृष्टि है। दुःख तो है, राग है, विषयभोग का राग है। परन्तु उस दुःख से दृष्टि परान्मुख है। स्वभाव में आनन्द सन्मुख दृष्टि है, दुःख पर उसकी दृष्टि है नहीं। उसका नाम अव्रत श्रावक जैन कहने में आता है। अब, व्रत तो बाद में (आयेंगे)। बारह व्रत का धारण करनेवाला श्रावक, वह तो बाद की बात है। पहले यह उसके पास होना चाहिए। यह नहीं है तो उसे श्रावक कहने में आता नहीं। कहो, समझ में आया ?

अब ३५३। सबमें आगे तीन आया है। दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीन होते हैं या नहीं ? ३५३ है न। देखो !

द्रव्यदृष्टि च संपूर्णं, शुद्ध सम्यग्दर्शनम्।
ज्ञानमयं सार्थ शुद्धं, करणानुयोग चिंतनं॥३५३॥

है ३५३ ? देखो ! करणानुयोग की बात करते हैं, तारणस्वामी। करणानुयोग का अर्थ कर्म, कर्म का परिणाम, आत्मा का सूक्ष्म परिणाम क्या है, वह करणानुयोग में बात चलती है। द्रव्यानुयोग में तत्त्व की बात चलती है, करणानुयोग में परिणाम की सूक्ष्म बात चलती है, कथानुयोग में कथा चलती है, चरणानुयोग में पुण्य-पाप का अधिकार चलता है। पुण्य किसको और पाप (किसको कहना)। यहाँ चरणानुयोग में कहते हैं, '**द्रव्यदृष्टि च संपूर्णं**' द्रव्यदृष्टि-द्रव्यार्थिकनय पूर्ण द्रव्य को देखनेवाली है। क्या कहते हैं ? देखो ! कभी पढ़ा है कि नहीं ? सेठ ! ना कहते हैं, रामजीभाई ना कहते हैं। समझ में आया ? क्या कहते हैं ?

द्रव्यदृष्टि च संपूर्णं, शुद्ध सम्यग्दर्शनम्। द्रव्य अखण्ड मेरा। द्रव्य अर्थात् ये पैसे नहीं, हों ! आत्मा। वह कहते थे, यहाँ आये थे, मोहनभाई के रिश्तेदार थान से आये थे। लिखा है न ? द्रव्यदृष्टि ते सम्यग्दृष्टि। अपने वहाँ जैन स्वाध्यायमन्दिर में है न। द्रव्यदृष्टि ते सम्यग्दृष्टि। उसने कहा, महाराज ! ये पैसेवाला सम्यग्दृष्टि, ऐसा कहाँ से आया ? क्योंकि यहाँ पैसेवाले बहुत आते हैं। पैसेवाले पहले से बहुत आते हैं। लाखोंपति, करोड़ोंपति सम्यग्दृष्टि ? अरे... ! आपको खबर नहीं है। थानवाले माणेकचन्दभाई ! समझ में आया ? भाई ! द्रव्यदृष्टि (अर्थात्) ये आपके पैसे नहीं। शोभालालभाई !

यहाँ द्रव्य शब्द आया न ? '**द्रव्यदृष्टि च संपूर्णं**' द्रव्य अर्थात् अपना स्वभाव-वस्तु त्रिकाल। उसे द्रव्य कहते हैं। एक समय में राग नहीं, निमित्त नहीं, एक समय की पर्याय नहीं और गुण-गुणी का भेद नहीं। मैं गुणी आत्मा हूँ और मेरे में ज्ञान, दर्शन, आनन्द है, ऐसा भी भेद नहीं। अभेद एकाकार द्रव्य स्वभाव त्रिकाल ज्ञायक है, उसको यहाँ द्रव्यदृष्टि कहते हैं। जो सम्यग्दर्शन का विषय द्रव्य; उसकी दृष्टि, उसका नाम सम्यग्दर्शन। समझ में आया ? आहाहा ! उसमें कोई भगवान भी काम करते नहीं और भगवान पर लक्ष्य करने से द्रव्यदृष्टि होती नहीं। शुभराग की क्रिया में लक्ष्य होने से भी द्रव्यदृष्टि होती नहीं। अपनी पर्याय का लक्ष्य करने से भी द्रव्यदृष्टि होती नहीं। गुण-गुणी का भेद करने से भी द्रव्यदृष्टि होती नहीं।

आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड है, पूर्ण ज्ञान और आनन्द का धरनेवाला मैं आधार हूँ। और ये गुण मेरे में रहनेवाले आधेय हैं। शक्कर आधार है और शक्कर में सफेदपना, मिठास रहती है, वह आधेय है—ऐसा भेद भी जिसमें नहीं है। एक द्रव्यदृष्टि पूर्ण ज्ञायकमूर्ति...

सम्पूर्ण द्रव्यदृष्टि द्रव्यार्थिकनय पूर्ण द्रव्य को देखनेवाला है। क्या कहा ? द्रव्यदृष्टि सम्पूर्ण को देखनेवाली है। सम्पूर्ण शब्द पड़ा है न। समझ में आया ? देखो ! यह आत्मा का वास्तु होता है। सेठ ! द्रव्यदृष्टि सम्पूर्ण, ऐसा तारणस्वामी ३५३ गाथा में पुकार करते हैं। जिस दृष्टि में द्रव्य आया, वह दृष्टि सम्पूर्ण है। बाकी सम्पूर्ण नहीं, सब अपूर्ण है। समझ में आया ? अपनी पर्याय को मानना, वह भी अपूर्ण है। वह सम्पूर्ण नहीं। मात्र गुण के भेद को मानना, वह भी सम्पूर्ण नहीं। राग, पुण्य-पाप, दया, दान का विकल्प उठता है, उसको मानना, वह सम्पूर्ण नहीं। द्रव्यदृष्टि सम्पूर्ण है। थोड़ी सूक्ष्म बात है, परन्तु आज तो हिन्दी में एक ही व्याख्यान है न। बाद में थोड़ा ध्यान रखना, समझना।

'**द्रव्यदृष्टि च संपूर्णं**' एक समय में भगवान पूर्ण, पूर्ण, पूर्ण अभेद एकरूप प्रभु, ऐसी दृष्टि को यहाँ पूर्ण—सम्पूर्ण कहते हैं। इस सम्पूर्ण की दृष्टि हुए बिना द्रव्यदृष्टि होती नहीं। और द्रव्यदृष्टि को ही सम्पूर्ण लक्ष्य में आता है, उसको सम्यग्दर्शन कहते हैं। लड़के घर पर वाँचन करते हैं या नहीं ? कहो, समझ में आया ? देखो ! द्रव्यार्थिनय पूर्ण द्रव्य को देखनेवाला है। द्रव्यार्थिकनय का अर्थ क्या है ? अपना जो द्रव्य त्रिकाल ज्ञायकमूर्ति है, जिस ज्ञान का... द्रव्यार्थिक, द्रव्य अर्थात् वस्तु, अर्थ अर्थात् प्रयोजन है, जिस ज्ञान में द्रव्य प्रयोजन है, ऐसे ज्ञान को द्रव्यार्थिकनय कहने में आता है। बहुत सूक्ष्म। ...याजी ! कितने साल से सम्प्रदाय में हो, परन्तु द्रव्यार्थिक अर्थात् क्या ? द्रव्य अर्थात् क्या ? द्रव्यदृष्टि सम्पूर्ण अर्थात् क्या ? (यह ज्ञात नहीं होता)।

यह आत्मा का माणेकस्तम्भ है। मोक्षमण्डप डालने में सम्यग्दर्शन माणेकस्तम्भ है, शादी करते हैं न ? शादी। क्या करते हैं ? लकड़ी डालते हैं न ? स्तम्भ डालते हैं। चार बाजु लकड़ी (डालते हैं)। माणेकस्तम्भ कहते हैं न। शादी करते समय। चार लकड़ी है, चार गति में भटक। ऐसा कहते हैं न शादी में ? ऐसे यहाँ मोक्ष का माणेकस्तम्भ सम्यग्दर्शन में है। अमरचन्दभाई ! ये चार प्रकार का-दर्शन, ज्ञान, चारित्र और इच्छा निरोध का आराधन स्वभाव में, यह मोक्षमार्ग का माणेकस्तम्भ है। उन चारों में भी सम्यग्दर्शन पहले है। सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान नहीं, सम्यग्दर्शन बिना चारित्र नहीं, सम्यग्दर्शन बिना तप नहीं, सम्यगदर्शन बिना श्रावक नहीं, सम्यग्दर्शन बिना मुनि नहीं। सम्यग्दर्शन बिना व्यवहार से भगवान की भक्ति भी नहीं।

कहते हैं, **द्रव्यदृष्टि च संपूर्णं, शुद्ध सम्यग्दर्शनम्।** इसी से शुद्ध सम्यग्दर्शन का लाभ होता है। लो, यह लाभ। बनिये लाभ करते हैं न? कितने पैसे हुए? पचास हजार बढ़े, लाख या दो लाख? हिसाब करते हैं या नहीं? दशहरा कहते हैं न? क्या कहते हैं? विजयादशमी। दशहरा। हिसाब लिखने को जाते हैं। दिवाली आये तो हिसाब लिखना चाहिए न। वह लाभ कितना हुआ जड़ का, उसका मिलान करता है। आत्मा में क्या लाभ हुआ, वह बात यहाँ करते हैं। सम्यग्दर्शन का लाभ वही लाभ है। दूसरा कोई लाभ है नहीं। समझ में आया?

देखो! राग की मन्दता हुई, वह भी लाभ नहीं। लक्ष्मी प्राप्त हुई, करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ लाभ नहीं; कुटुम्ब-कबीला बहुत हुआ, वह लाभ नहीं; अकेले व्रत, नियम का राग मन्द किया, वह भी लाभ नहीं। लाभ तो भगवान त्रिलोकनाथ उसे कहते हैं कि, वही यहाँ तारणस्वामी कहते हैं कि लाभ तो सम्यग्दर्शन का लाभ मिलना, वह लाभ है। समझ में आया? भगवान आत्मा देहदेवल में विराजमान परमानन्द की मूर्ति है। परमात्मा अपना निज स्वरूप। उसकी द्रव्यदृष्टि सम्पूर्ण करके अपने में सम्यग्दर्शन का लाभ होना, उसका नाम लाभ सवाया (है)। बनिये लिखते हैं या नहीं? लाभ सवाया, ऐसा कुछ लिखते हैं न? लक्ष लाभ। लक्ष लाभ यह। आत्मा का अन्तर लक्ष्य करने में सम्यग्दर्शन का लाभ होता है, यह लक्ष्य लाभ है, दूसरा कोई लाभ है नहीं।

कहते हैं, शुद्ध सम्यग्दर्शन का लाभ होता है। शुद्ध शब्द प्रयोग किया है न? व्यवहार सम्यग्दर्शन नहीं। व्यवहारसम्यग्दर्शन, सम्यग्दर्शन है नहीं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करना, नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, वह तो व्यवहार श्रद्धा है। वह सम्यग्दर्शन नहीं। समझ में आया? बाद में क्या कहते हैं?

'ज्ञानमयं सार्थ शुद्धं' ज्ञानमय यथार्थ शुद्ध आत्मा का अनुभव होता है। सम्यग्दर्शन में होता है क्या? होता है क्या? ज्ञानमय पदार्थ आत्मा। अकेला चैतन्यप्रकाश ज्ञायकमूर्ति देखने-जानने स्वभाव स्वरूप, ऐसा ज्ञानमय शुद्ध आत्मा का अनुभव होता है। सम्यग्दर्शन के लाभ में ज्ञानमय आत्मा का अनुभव होता है। राग का अनुभव छूटकर, थोड़ा हो भले, स्वभाव के अनुभव का लाभ (होता है)। ज्ञानमय आत्मा का आनन्द का लाभ होता है। ज्ञानमय यथार्थ शुद्ध आत्मा का अनुभव होता है। समझ में आया?

कैसा है आत्मा? ज्ञानमय यथार्थ शुद्ध आत्मा। ऐसा नहीं कहा है कि आत्मा आस्रवमय, रागमय, दया, दानवाला आत्मा, पुण्य-पापवाला आत्मा, कर्मवाला आत्मा, ऐसा नहीं (कहा है)। ज्ञान चैतन्यप्रकाश, मात्र ज्ञ-स्वभाव। ज्ञानप्रकाश। ज्ञान (अर्थात्) यह वाणी, पुस्तक, अक्षर नहीं, हों! अन्दर प्रकाश जो चैतन्य का ज्ञानमय है, वह ज्ञानमय शुद्ध पदार्थ, उसका अनुभव-भोगना होना, उसका नाम सम्यग्ज्ञान कहने में आता है। श्रावक को चौथे गुणस्थान से वह शुरु होता है। समझ में आया?

करणानुयोग की चिन्ता का फल, भाई! ऐसे लिया है। देखो! करणानुयोग, करणानुयोग अकेला परिणाम-परिणाम करे, ऐसा नहीं। करणानुयोग के परिणाम का विचार कर और परिणाम को जाननेवाला त्रिकाल द्रव्य, उसका ज्ञान कर तो करणानुयोग की चिन्ता का फल कहने में आता है, नहीं तो कहने में आता नहीं। बहुत भेद आते हैं न? भेद। ऐसा किया, कर्म प्रकृति ऐसी है, इतना उदय आता है, ऐसा है। हो। सबका फल क्या? करणानुयोग की विचारधारा का फल क्या? १४८ प्रकृति है, आठ कर्म है, उसकी १४८ प्रकृति है, मिथ्यात्व में इतनी प्रकृति का उदय है, इतनी सत्ता है, इतनी उदीरणा और इतना विपाक। उसका फल क्या? कहते हैं न?

'**करणानुयोग चिंतनं**' करणानुयोग, परिणाम का स्व का और पर का परिणाम की विचारधारा में द्रव्यस्वभाव का लाभ होना उसका फल है। करणानुयोग में वीतरागता कहा न? चारों अनुयोग में वीतरागता कहा है या क्या? चारों अनुयोग का सार भगवान ने वीतरागता कहा है। पंचास्तिकाय। शास्त्र तातपर्य। १७२ गाथा, अपने अधूरी है। सब शास्त्र का तात्पर्य वीतरागभाव (है)। करणानुयोग में भी वीतरागता है। क्या? निमित्त, राग और अल्प पर्याय से हटकर स्वभाव पर दृष्टि दे, वह वीतरागता है। वह शास्त्र पढ़ने का फल है। अकेला कण्ठस्थ कर ले, लोगों को कहे, वह कोई शास्त्र का तात्पर्य है नहीं। '**करणानुयोग चिंतनं**'। करणानुयोग का चिन्तवन, वह उसका फल है। समझ में आया? बाद में, ३५६? ३५६।

द्रव्यानुयोग उत्पाद्यं, द्रव्यदृष्टि च संजुतं।
अनन्तानन्त दिष्टन्ते, स्वात्मानं व्यक्त रूपयं॥३५६॥

क्या कहा? द्रव्यानुयोग का अभ्यास करना चाहिए। द्रव्यानुयोग का अर्थ (यह

कि) आत्मा क्या है, परमाणु क्या है, विकार क्या है, ऐसा अभ्यास तत्त्वदृष्टि का करना चाहिए। द्रव्यानुयोग—द्रव्य जिसमें प्रधानपने है, उसका अभ्यास करना चाहिए। '**द्रव्यानुयोग उत्पाद्यं**' अभ्यास करना चाहिए। '**उत्पाद्यं**' का अर्थ है-अभ्यास करना चाहिए, इसमें सीधा है। '**द्रव्यानुयोग उत्पाद्यं**' है न शब्द ? भाई! इसका अर्थ यह है। उत्पाद अर्थात् उत्पन्न करना। द्रव्यानुयोग का अभ्यास करना। देखो! चार अनुयोग में द्रव्यानुयोग का अभ्यास मुख्य आत्मा की दृष्टि प्राप्ति करने में वही अभ्यास मुख्य है। समझ में आया ?

'**द्रव्यदृष्टि च संजुतं**' साथ में द्रव्यार्थिकनय से शुद्ध आत्मा की दृष्टि भी प्राप्त करनी चाहिए। क्या कहते हैं ? अकेला अभ्यास-अभ्यास नहीं। अकेला द्रव्यानुयोग का अभ्यास कर लिया कि यह आत्मा है, ऐसा है, यह ऐसा है, वह तो परलक्ष्यी बात हुई। अपना आत्मा अन्तर वस्तु अखण्डानन्द प्रभु पूर्ण स्वरूप है, उसकी अन्तर्दृष्टि करके द्रव्यदृष्टिसहित अभ्यास करना, उसका नाम द्रव्यानुयोग का तात्पर्य है। समझ में आया ? द्रव्यदृष्टि भी प्राप्त करनी चाहिए। जिससे '**स्वात्मानं व्यक्त रूपयं अनन्तानन्त दिष्टन्ते**' क्या कहते हैं ? अपने शुद्ध आत्मा के समान जगत की अनन्तानन्त ... प्रगटरूप से दिखायी पड़े। क्या कहते हैं ? जिसकी राग और अल्पज्ञ आदि पर्याय की दृष्टि हटकर ज्ञायक पूर्ण स्वभाव की दृष्टि हुई, उसकी दृष्टि में अनन्त आत्मा परमात्मस्वरूप है, पर्याय को छोड़कर स्वभाव परमात्मा है—ऐसा उसको देखने में आता है। अमरचन्दभाई! अपनी पर्यायदृष्टि छूट गयी तो दूसरे को देखने में पर्याय से नहीं देखकर उसका द्रव्यस्वभाव क्या है, अनन्तानन्त आत्मा, चौदह ब्रह्माण्ड....

यह क्यों कहा ? कोई एक ही आत्मा कहते हैं तो उसको चीज़ का भान नहीं है। वेदान्त आदि एक ही आत्मा कहते हैं। जैन में भी कितने ही कथन करते... करते... करते... करते एक में आ जाते हैं। ऐसा है नहीं। अनन्त आत्मा है, इसलिए सिद्ध किया है। अमरचन्दभाई! कोई कहता है न कि यह अन्ततः तो वेदान्त में चला जाता है। एक व्यक्ति एक व्यक्ति नहीं, अनन्त व्यक्तिरूप एक। ऐसा नहीं है, ऐसा नहीं है। ऐसा है नहीं। लो में लो मिल जाती है, ऐसा भी नहीं है। अपना तत्त्व पर अनन्त आत्मा से भिन्न है। समझ में आया ? वह करते-करते चले जाते हैं, निश्चय का अभ्यास करते (मानने लगते हैं कि), एक आतमा है, वेदान्त जैसा हो गया, अनन्त में मिल गया। दृष्टि अनन्त में मिल गयी, उसका नाम सम्यक्। ऐसा है नहीं।

इसलिए तारणस्वामी (कहते हैं), जैन सर्वज्ञ परमात्मा ने, त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने जो अनन्त आत्मा देखे, अनन्त पदार्थ देखे, उसको साथ में सिद्ध करते हैं। समझ में आया? आपको ज्ञात नहीं होता, अध्यात्म की बात करते-करते ऐसी बात करे कि उसमें एक ही आत्मा रह जाये और अनन्त आत्मा का नाश हो जाए। बहुत अच्छी करते हैं, भाई! अच्छी बात करते हैं। मालूम नहीं है, भान नहीं है। सेठ! अध्यात्म की ऐसी बात करे कि ओहो..! अन्ततः तो एक है या नहीं? अन्ततः तो एक स्वरूप है या नहीं? है ही नहीं।

प्रत्येक आत्मा की अनादि की सत्ता भिन्न है और सिद्ध परमात्मा में अनन्त सत्ता भिन्न रहती है। कभी सिद्ध की सत्ता एक हो जाती नहीं। मोक्ष में भी पूर्णानन्द की प्राप्ति प्रत्येक आत्मा को हुई तो प्रत्येक सत्ता सिद्ध में भी भिन्न है। अनादि की भिन्न है, तो मुक्ति होने के बाद अपना नाश हो जाए या भिन्न सत्ता निर्मल रह जाए? निर्मल भिन्न सत्ता रहती है। तारणस्वामी कहते हैं कि **अनन्तानन्त दिष्टन्ते, स्वात्मानं व्यक्त रूपयं।** अनन्त आत्मायें निर्मल पूर्ण ज्ञानघन हैं ज्ञायकभावरूप। क्यों? कि अपने आत्मा को पुण्य-पाप का विकल्प अर्थात् आस्रव से भिन्न जाना, कर्म से भिन्न जाना, वही आत्मा। तो सब आत्मा ऐसे हैं। कोई आत्मा रागवाला है और कोई मिथ्यात्वाला है, कोई कर्मवाला है, ऐसा नहीं है। क्योंकि आत्मा ऐसा है नहीं। समझ में आया? देवीलालजी! सब आत्मा कैसे हैं? देखो!

कल कहा था न? देवचन्दजी भी कहते हैं। 'प्रभु! तुम जाणग रीति सौ जग देखते हो लाल...' हे नाथ! हे सर्वज्ञप्रभु! आप सर्व जीव को शुद्ध देखते हो। 'निज सत्ताए शुद्ध सोने पेखता हो लाल..' हे परमात्मा! सब आत्मा की अन्तर निर्मल ज्ञायक, आनन्द की शक्ति को आप आत्मा कहते हो। आपने आत्मा को ऐसा देखा है। बराबर है? समझ में आया? तो सम्यग्दृष्टि को अपना जब राग और पर्याय के अंश की दृष्टि को छोड़कर स्वभाव की पूर्ण ज्ञायकभाव की दृष्टि हुई, ऐसे ही सब आत्मा ज्ञायकमय हैं, ऐसी मान्यता में देखते हैं। समझ में आया? पर्याय में अन्तर है, वस्तु में अन्तर नहीं है, अभव्य हो या भव्य हो, अनन्त संसारी हो या एकावतारी हो। समझ में आया?

अनन्तानन्त दिष्टन्ते, स्वात्मानं व्यक्त रूपयं। क्या कहते हैं? शुद्ध आत्मा के समान। जगत की अनन्तानन्त आत्मायें प्रगटरूप से दिखलायी देती है। प्रगटरूप से का

अर्थ—वह पर्याय प्रगट है, उतना नहीं; उसका पूर्ण स्वरूप है। चिदानन्द ज्ञायकज्योति अखण्डानन्द पूर्ण परमात्मा, सब आत्मा ऐसे हैं। एकेन्द्रिय में भी ऐसा है, दो इन्द्रिय में भी ऐसा है। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय तो काया और अल्प पर्याय का नाम (है), वह वस्तु का स्वरूप नहीं है। वस्तु अकेली चैतन्यज्योति चौदह ब्रह्माण्ड में अनन्त आत्मा मात्र ज्ञायकभाव से भरे हैं, ऐसे अपनी पर्यायदृष्टि छोड़कर स्वभाव की दृष्टि हुई तो सब आत्मा को सम्यग्दृष्टि परमात्मा स्वभाव से देखते हैं। रतनलालजी! सुना ही नहीं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रगट, प्रगट। वस्तु प्रगट ही है। वस्तु है न? वर्तमान पर्याय प्रगट है न? वस्तु प्रगट नहीं है। परन्तु ज्ञानी ने अपने द्रव्य को श्रद्धा में प्रगट देखा तो सब आत्मा प्रगट शुद्ध हैं। ज्ञायक प्रगट है, अप्रगट है नहीं।

मुमुक्षु : अपने आत्मा को....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना द्रव्य देखा न, इसलिए सबका द्रव्यस्वभाव, वस्तुस्वभाव व्यक्त अर्थात् प्रगट निर्मल है, ऐसा ज्ञानी अपने को देखते हैं, ऐसा पर को देखते हैं। पर्याय को अपने में गौण की, तो दूसरे को देखने में पर्याय को गौण करके देखते हैं। ओहोहो! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वास्तु यह है। निश्चय वास्तु यह है न। (बाकी) वास्तु क्या है? किसी के मकान में और किसी के पत्थर में रहना, वह वास्तु है? सेठ!

'**अनन्तानन्त दिष्टन्ते, स्वात्मानं व्यक्त रूपयं**' ३५६ (गाथा पूरी) हुई। ३५७।

दिव्यं द्रव्यदृष्टिं च, सर्वज्ञं शाश्वतं पदं।
नन्तानन्त चतुष्टं, केवलं पद्म ध्रुवं॥३५७॥

आहा..! कहाँ रहा है? आत्मा के कितने गुण गाये हैं! तारणस्वामी ने आत्मा के गाने कितने गाये हैं! उसमें रहे हुए को, सम्प्रदाय में रहे हुए को खबर नहीं। शोभालालभाई! कहना तो पड़े न। रतनलालजी! खबर नहीं क्या कहते हैं। अपने अमुक में हैं, अपने तारण समाज के कहलाते हैं। क्यों सेठ? परन्तु क्या कहते हैं, उसकी पहचान है? परमेश्वर जैन

त्रिलोकनाथ की वाणी जैसी आयी, उसका अनुभव करके, ज्ञान करके (नक्की) किया है कि भगवान कहते हैं, वही सत्य है। इसके सिवा अन्य कोई कहते हैं, वह तीन काल में सत्य नहीं है।

कहते हैं, **दिव्यं द्रव्यदृष्टिं च, सर्वज्ञं शाश्वतं पदं।** क्या कहते हैं ? द्रव्यदृष्टि अपूर्व है। '**दिव्यं**' शब्द है न ? द्रव्यदृष्टि '**दिव्यं**'। आहा.. ! समझ में आया ? एक ज्ञायक परमानन्द परमात्मा अपने को देखना, वही दृष्टि दिव्य अर्थात् प्रधान है। है ? अपूर्व है। दूसरी कोई दृष्टि को अपूर्व कहते नहीं। समझ में आया ? अपूर्व। एक समय में भगवान अपना पूर्ण आनन्द ज्ञायक (है), ऐसी दृष्टि, वह अपूर्व दृष्टि है। समझ में आया ? बाकी भगवान सच्चे हैं और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा की दृष्टि, वह दृष्टि नहीं है। अमरचन्दभाई ! वह तो व्यवहारदृष्टि हो गयी। ऐसा तो अनन्त बार माना है। अपना दिव्य स्वभाव, उसकी दृष्टि को ही यहाँ दिव्य दृष्टि कहते हैं। उसका नाम प्रधान, दिव्यता अर्थात् प्रधान दृष्टि है।

'**सर्वज्ञं शाश्वतं पदं**' क्या कहते हैं ? जो अपने आत्मा को सर्वज्ञ अविनाशी पद में दिखाती है। क्या कहते हैं ? द्रव्यदृष्टि को अपूर्व क्यों कहा ? द्रव्यस्वभाव की दृष्टि को अपूर्व क्यों कहा ? क्योंकि वह दृष्टि अपने में सर्वज्ञपद को दिखाती है। अपने में द्रव्यस्वभाव में सर्वज्ञपद को दिखाती है। पर सर्वज्ञ पर में रहे। समझ में आता है या नहीं ? प्रेमचन्दजी ! '**सर्वज्ञं शाश्वतं पदं**' अपने में सर्वज्ञपद शाश्वत अविनाशी ध्रुव (है), ऐसे पद को द्रव्यदृष्टि अपूर्व दिखाती है। समझ में आया ? थोड़ा सूक्ष्म तो है। आध्यात्मिक बात है या नहीं ? श्रावकाचार की बात है। यह तो अभी श्रावकाचार की बात है। मुनिपना तो कहाँ रह गया।

कहते हैं, '**सर्वज्ञं शाश्वतं पदं**' यह दृष्टि दिखाती है। अपना निज अकेला ज्ञ-स्वभाव, जाननस्वभाव, पूर्ण ज्ञायक सर्वज्ञपद, वह दिव्य दृष्टि अपूर्व, वह सर्वज्ञ अपने निज पद को दिखाती है। इसलिए उस दृष्टि को अपूर्व दिव्यदृष्टि कहने में आयी है। कहो, जुगराजजी ! समझ में आता है ? यह जैनपना है। समझ में आया ? कोई सम्प्रदाय में जैनपना रहता नहीं। कोई कपड़े में रहता नहीं। कपड़ा छोड़ने से भी जैनपना आ नहीं जाता। अन्तर में... आहाहा ! '**सर्वज्ञं शाश्वतं पदं**' ध्रुव पद, ध्रुव पद। ध्रुव पद अविनाशी आत्मा

नित्यानन्द सच्चिदानन्द प्रभु, अपना पूर्ण स्वरूप, उसको दृष्टि दिखाती है; इसलिए उस दृष्टि को अपूर्व अर्थात् दिव्यदृष्टि कहने में आयी है। दिव्य आँख, दिव्यदृष्टि, अपूर्व चक्षु। समझ में आया? यह आँख नहीं। ये तो मिट्टी की-धूल की है। अन्दर में पर को देखना, वह भी नहीं। अपने को पूर्ण देखना, उस दृष्टि को दिव्य और अपूर्व दृष्टि कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

'**नन्तानन्त चतुष्टं**' अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य केवल असहाय, परसंगरहित, निश्चय अविनाशी प्रफुल्लित कमल के समान विकसित निर्लेप झलकती है। क्या कहते हैं? ओहो! द्रव्यदृष्टि—वस्तु की दृष्टि—परमार्थ तत्त्व की दृष्टि को दिव्य क्यों कहने में आयी है? कि अपने में अनन्त ज्ञान (है)। शाश्वत तो कहा ध्रुव, परन्तु ध्रुव में शाश्वत में अन्दर में क्या रहा है? बेहद ज्ञान, बेहद दर्शन, बेहद आनन्द, बेहद वीर्य (रहा है)। आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और वीर्य (है), ऐसा वह दिव्य दृष्टि दिखाती है। ओहोहो! नरभेरामभाई!

केवल सहाय। कहते हैं, केवल—अकेला ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य का पिण्ड, उसका स्वभाव अनन्त अपार अमर्यादित (है), ऐसा वह दृष्टि दिखाती है। केवल परसंगरहित। रागरहित, कर्मरहित, शरीररहित। देखो! अबद्धस्पृष्ट। भगवान आत्मा पर से बन्ध नहीं, पर से मिला नहीं, पर का संग नहीं—ऐसा परमानन्द अपना स्वरूप, उसको दृष्टि दिखाती है, इसलिए उस दृष्टि को दिव्य अर्थात् अपूर्व कहने में आया है। समझ में आया?

'**पदम्**' प्रफुल्लित कमल के समान विकसित निर्लेप झलकती है। कमल है न? कमल। वह पहले संकुचित होता है, फिर विकसित हो जाता है। दृष्टि दिखाती है कि अपना स्वभाव अन्दर पूर्ण पड़ा है, उस पूर्ण में अभ्यास करने से उसका विकास केवलज्ञान में हो जाता है। जैसा अन्दर में केवलज्ञान, केवलदर्शन, आनन्द दिखाती है, उस दृष्टि के विषय में अभ्यास करते-करते कमल जैसे खिल जाता है, वैसे अपना अनन्त चतुष्टय खिल जाता है। ऐसा वह दृष्टि दिखाती है। समझ में आया? ऐ... सेठी!

ऐसा कहकर क्या कहा? कि कोई राग की क्रिया या कोई व्यवहार की क्रिया से आत्मा प्रफुल्लित होता है, ऐसा नहीं है। दृष्टि ऐसा नहीं देखती है। रतनलालजी! समझ में

आया ? चश्मा-बश्मा नहीं है ? भूल गये ? कहो, समझ में आया ? देखो ! एक गाथा में कितना कहते हैं ! '**नन्तानन्त चतुष्टं, केवलं पद्म ध्रुवं**' दृष्टि ऐसी मनाती है कि कमल समान आत्मा प्रफुल्लित पड़ा है। पूर्ण अनन्त चतुष्टमय, उसमें अन्तर एकाकार होने से वह प्रगट हो जाता है। कोई राग की क्रिया या दया, दान, व्यवहार सम्यग्दर्शन, चारित्र से प्रगट होता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? अपने स्वभाव की अन्तरदृष्टि का विषय करने से, उसमें रहते, रहते, रहते शक्ति में जो अनन्त चतुष्टय पड़ा है, वही पर्याय में अनन्त चतुष्टय प्रगट हो जायेगा। कारण में से कार्यरूप हो जायेगा। आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं कि '**केवलं पद्म ध्रुवं**'। अकेला विकसित निर्लेप। भगवान अन्दर निर्लेप अपना शुद्ध है, ऐसा दृष्टि देखती है और पर्याय में भी ऐसा निर्लेप अभ्यास करने से हो जाएगा। कोई दूसरे का अभ्यास करके, व्यवहार करते-करते, निमित्त का संग करके केवलज्ञान अर्थात् मुक्ति होगी, ऐसा है नहीं। ऐसा दृष्टि दिखाती नहीं। भाई ! दृष्टि ऐसा नहीं दिखाती है। आहाहा ! अपना त्रिकाल अनन्त चतुष्टय अन्दर पड़ा है, उसे दृष्टि दिखाती है और वह चतुष्टय अन्दर में से एकाकार होकर प्रगट होता है। दूसरी कोई क्रिया उसकी है नहीं। विकल्प, दया, दान और व्यवहार-फ्यवहार प्रगट होने में कारण-फारण है ही नहीं। मूलचन्दभाई ! आहाहा ! उसका नाम द्रव्यदृष्टि, उसका नाम सम्यग्दर्शन, उसका नाम धर्म का प्रथम पाया-धर्म की नींव-धर्म की प्रथम नींव। बाद में श्रावकपने का व्रत का विकलप उठता है। जब उसकी स्थिरता विशेष होती है, तो वहाँ श्रावकपना उसको पंचम गुणस्थान योग्य दशा होती है। विकल्प उठता है, उसको व्यवहार कहते हैं। स्थिरता होती है, उसको निश्चय कहते हैं। श्रावक के आचार का वर्णन करने से पहले दृष्टि का वर्णन ऐसा किया है। ऐसी दृष्टि नहीं हो तो श्रावकपना सच्चा कभी होता नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)